'वे' स्कल क्यों आते हैं?

मोहम्मद उमर

पिछले कई सालों से प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहा हूँ। कई राज्यों में शिक्षकों के साथ काम करने का अवसर मिला है। शिक्षकों के साथ संवाद करते समय जब भी प्राथमिक शिक्षा की बदहाली पर बात होती है तो उनकी तरफ से कई कारण गिनाए जाते हैं। वित्तीय प्रबन्धन संसाधनों की अनुपलब्धता, पालकों की मानसिकता आदि को लेकर बहुत-से तर्क हैं उनके पास। लेकिन एक तर्क जो प्रायः सभी राज्यों के शिक्षक एकमत होकर देते रहे हैं, वह है मध्याह्न भोजन को लेकर उनके मन में बहुत से पूर्वाग्रह, जिससे कम-से-कम मैं तो आज तक सहमत नहीं हो सका हूँ।

शिक्षक समुदाय का मानना है कि जब से ये मध्याह्न भोजन योजना प्रारम्भ हुई है, शिक्षा का स्तर गिरता गया है। उनका मानना है कि शिक्षकों

का बहुत-सा समय कक्षा में पढ़ाने के अलावा अब भोजन सम्बन्धी प्रबंधन में चला जाता है। और-तो-और जाँच करने वाले वरिष्ठ अधिकारी गण भी विद्यालय की शिक्षण गुणवत्ता को नहीं बल्कि सिर्फ भोजन की गुणवत्ता को देखते हैं। हो सकता है कि इन सारी बातों में सच्चाई हो। अक्सर शिक्षकों के मुँह से यह सुनने को मिलता है कि "ये बच्चे पढ़ने नहीं बल्कि खाना खाने आते हैं।" भारत में प्राथमिक शिक्षा की बदहाली और अपनी स्वयं की खामियों को एक तरफ रखकर सारी वजहों को इस एक वाक्य की चादर तले ढक देना कहाँ तक जायज़ है?

मैं कुछ अलग-अलग अनुभवों को आपके साथ साझा करना चाहूँगा। इन अनुभवों से शायद आपको स्कूल की चहारदीवारी के भीतर बच्चों के एक साथ खाना खाने और इस खाने की महत्ता का अन्दाज़ा लगाने में मदद मिल सकेगी।

***

कुछ साल पहले मध्य प्रदेश के खण्डवा ज़िले के एक विद्यालय में बच्चों को भूत दिखने का समाचार खूब प्रचारित हुआ था। यहाँ विद्यालय में रोज़ कोई-न-कोई बच्चा बेहोश होकर गिर जाया करता था। गाँव के लोगों ने इसे देवी मइया का प्रकोप माना और पूजा पाठ शुरू कर दिया। समाचार उड़ते हुए जब पास के गाँव में स्थित तंत्र-मंत्र करने वाली महिला तक पहुँचा तो उसने भी आकर जायज़ा लिया और बताया कि विद्यालय के

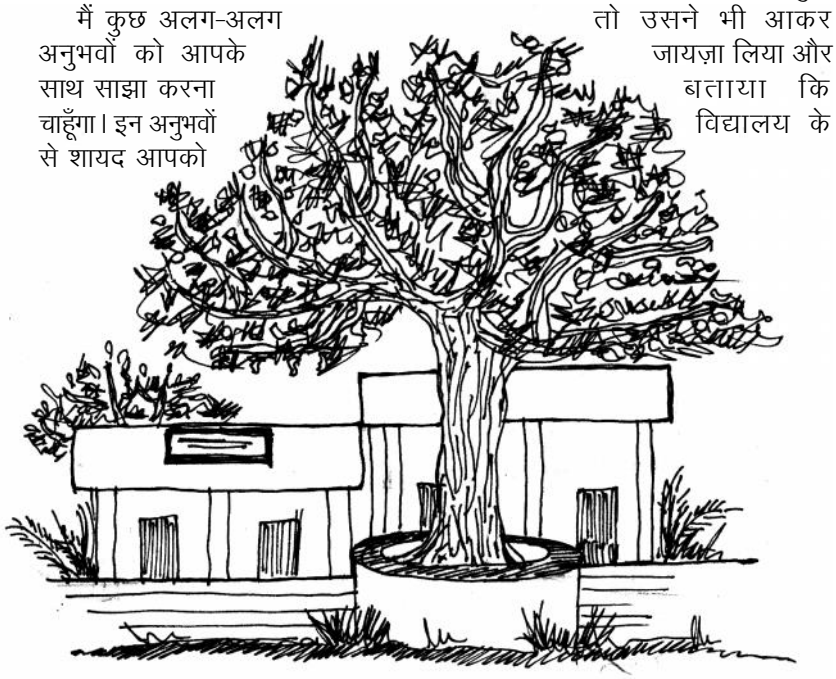

मध्य प्रदेश सन् 1995 में मध्याह्न भोजन योजना को पहली बार लागू करने वाले प्रदेशों में से एक है, हालाँकि, जल्द ही सन् 1997 में इसे बन्द कर दिया गया। सुप्रीम कोर्ट द्वारा सन् 2001 में दिए गए निर्देश के दबाव के चलते सन् 2002 में इस योजना के अन्तर्गत स्कूलों में *दलिया* देना शुरू किया गया। सन् 2004 में, राज्य सरकार ने बच्चों को स्वादिष्ट भोजन उपलब्ध कराने के लिए **रुचिकर मिड-डे मील स्कीम** की शुरुआत की।

इस योजना के शुरू होने के लगभग आठ महीने बाद एक गैर सरकारी संस्था, समाज प्रगति सहयोग, ने सन् 2004-2005 में मध्य प्रदेश के सात ज़िलों में शिक्षकों, माता-पिता, रसोइयों और बच्चों के समूहों के बीच एक प्रश्नावली सर्वे के द्वारा इस योजना के प्रभाव का अध्ययन किया। खण्डवा ज़िले में खल्वा ब्लॉक के रेंडमली चुने गए 10 गाँवों के सरकारी स्कूल इस अध्ययन का हिस्सा थे। ज्योत्सना जैन और मिहिर शाह ने 'इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली' पत्रिका में सन् 2005 में यह सूचित किया है कि इस योजना के शुरू होने की वजह से खण्डवा ज़िले के गाँवों के स्कूलों में 40% नामांकन बढ़ गया है और यह बढ़ोत्तरी लड़कियों (47%) और अनुसूचित जाति व जनजाति समूहों के बच्चों (45%) में अधिक हुई है। इस सर्वे का हिस्सा रहे अन्य ज़िलों की तुलना में, खण्डवा अपेक्षाकृत सफल रहा। यहाँ के 88 प्रतिशत पालकों का कहना था कि भोजन काफी अच्छा था और यहाँ अधिकांश शिक्षकों के साथ-साथ पालक भी यह चाहते हैं कि इस योजना को कायम रखा जाए। एक और महत्वपूर्ण बात यह रही कि नियमित रूप से जो भोजन वितरित हो रहा था उसके सेवन से कभी कोई भी बच्चा बीमार नहीं हुआ।

हालाँकि, ऐसा नहीं है कि इस योजना को लागू करने में दिक्कतें नहीं आईं। सर्वे में शामिल ज़िले के सभी स्कूलों में पालक-शिक्षक समितियों (parent-teacher associations, जिसने इसे लागू किया है) तक भोजन के लिए पैसा समय पर नहीं पहुँच रहा था। इसके अलावा, पालकों की सहभागिता कम थी, इसलिए इस योजना का पूरा भार ऐसे शिक्षकों पर आ जाता है जो शिक्षकों की कमी के चलते पहले से ही काम के बोझ से दबे हुए होते हैं। इसके अतिरिक्त, किसी एक शिक्षक को बाज़ार से कुछ भी खरीदने के लिए या बैंक से पैसे निकाल कर किराना खरीदने के लिए हर बार 10 कि.मी. दूर पैदल चलकर जाना पड़ता था। भोजन तैयार करने के लिए किसी भी स्कूल में रसोईघर नहीं था। अधिकांश स्कूलों में खाना पकाने के लिए अभी भी जलाऊ लकड़ी का इस्तेमाल किया जा रहा था और इनको इकट्ठा करने का भार आया रसोइयों पर। इस सर्वे में यह भी पाया गया कि 34% स्कूलों में कभी-कभी खाने की कमी भी हो जाती थी।

इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, अंक - नवम्बर, 2005 से साभार।

अहाते में स्थित पेड़ पर भूतों का निवास है और गाँव वालों को मिलकर चन्दा इकट्ठा करना चाहिए जिससे एक बड़ा यज्ञ किया जा सके।

तंत्र-मंत्र चलता रहा और भूत की बात पूरे गाँव में स्थापित होती गई। इसी बीच किसी चैनल वाले ने गाँव जाकर बच्चों से पूछ लिया कि भूत कैसा है, उसकी आँखें कैसी हैं आदि।

चैनल की खबर प्रसारित होने के

बाद तो और भी कई बच्चों को भूत दिखने लगा था। चर्चा ने इतना ज़ोर पकड़ा कि राज्य शासन को हस्तक्षेप करना पड़ा। ज़िला कलेक्टर के अनुरोध पर कुछ मनोविज्ञानकों तथा शिक्षा के मुद्दों पर कार्यरत संस्थान 'एकलव्य' के कार्यकर्ताओं की संयुक्त टीम ने यहाँ का दौरा किया। दिनभर की पूछताछ तथा पड़ताल के बाद कई कारण सामने आए जिनमें से दो कारण प्रमुख थे। पहला तो यह कि गाँव में अन्धविश्वासी लोगों की भरमार थी तथा विद्यालय में कार्यरत एक शिक्षक भी भूत-प्रेत में विश्वास रखते थे। बच्चों द्वारा भूत होने की सम्भावना पर यकीन करने के पीछे यही कारण थे लेकिन उनके बेहाश होने की वजह यह कतई नहीं थी। असल में, यह गाँव गुर्जर बाहुल्य है जिसमें बच्चों के माता-पिता रोज़ सुबह अपने पशुओं और खेतों के सिलसिले में बाहर चले जाते हैं। इतनी सुबह कुछ खाना बनाना मुमकिन नहीं होता। वे भी बिना खाए खेतों को जाते हैं और बच्चे भी ऐसे ही स्कूल चले जाते हैं। ऐसा इसलिए भी होता आ रहा है क्योंकि माता-पिता सोचते हैं कि विद्यालय में तो मध्याह्न भोजन मिलता ही है, बच्चे वहीं खा लेंगे।

विद्यालय चार बजे तक का था और यहाँ पर मध्याह्न भोजन एक बजे के बाद ही खिलाया जाता था। इस समय तक बच्चों को भूख लगने लगती और ऐसे कुछ बच्चे जो कि पहले से ही कुपोषण का शिकार थे तथा बीमारियों के कारण कमज़ोर थे, वे बेहोश होकर गिरने लगे। लेकिन जब भूत की अफवाह ने ज़ोर पकड़ा तो बच्चों के बेहोश होने की दर और भी बढ़ गई थी। खैर, यहाँ पर गई टीम ने भी इस समस्या से उबरने के लिए बच्चों के लिए भोजन का समय थोड़ा और पहले करने का सुझाव दिया था। इसके अलावा यह भी कहा गया था कि उन्हें भोजन में तमाम किस्म की हरी सब्ज़ियाँ और दालें दी जाएँ। बच्चों के लिए सही समय पर और सही मात्रा में पोषक तत्वों से युक्त भोजन मिलना बहुत आवश्यक है। इस तरह के गाँवों में यह आम बात होती है कि लोग सुबह बिना खाए-पिए काम को निकल जाते हैं और ऐसा ही बच्चों के लिए भी होता है। वे भी या तो रात का बचा-खुचा बासी खाना खाकर या फिर बिना कुछ खाए ही स्कूल चले जाते हैं। ऐसे में कुपोषण और कमज़ोरी आम बात है।

***

एक और घटना का ज़िक्र करना चाहूँगा। पिछले साल मुझे लगातार दो सप्ताह तक सिरोही ज़िले के कुछ विद्यालयों में जाने का अवसर मिला। लगातार तीन दिन किसी एक स्कूल में बच्चों, अभिभावकों व शिक्षकों के साथ संवाद करना तथा विद्यालय परिवेश के माहौल को दर्ज़ करना होता था। यहाँ पर मुझे दो अलग-अलग स्कूलों में मिले दो बच्चों के बारे में

बताता हूँ। पहला स्कूल प्राथमिक विद्यालय था जिसमें तीसरी कक्षा के बच्चों के साथ रोज़ एक बहुत ज़्यादा उम्र का युवक जिसकी अच्छी-खासी दाढ़ी-मूँछें आ चुकी थीं - बैठा दिखाई देता था। सभी की तरह बाकायदा स्कूली पोशाक में बस्ते के साथ वह रोज़ उपस्थित रहता था।

अन्य बच्चों की तरह ही इसकी कॉपी देखने पर मैंने पाया कि बहुत-से सरल वाक्य और गिनती लिखना सीख रहा है। आप कुछ भी बात कहो, कुछ भी काम करो, वह लगातार आपकी ओर हँसते हुए देखता रहता। हाँ, लेकिन यदि आप बोर्ड पर कुछ भी लिखने लगेंगे तो सबसे आगे खिसककर उसे अपनी कॉपी पर उतारने लगता। एक दिन मैंने उससे कहा कि "अपना नाम लिखकर बताओ।" तो उसने बहुत धीरे-धीरे अपनी कॉपी में लिखा - कमलेस।

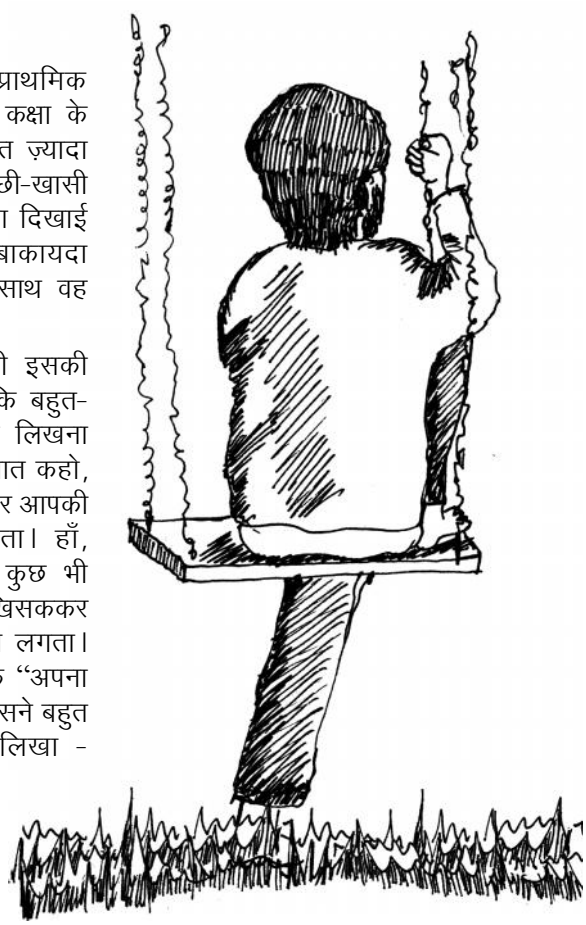

कमलेश अपने परिवार तथा गाँव की नज़रों में पागल है और शायद कुछ शिक्षकों की नज़रों में भी। लेकिन एक शिक्षक ऐसे भी हैं जो कमलेश को समझते हैं। दो साल पहले जब वह यहाँ आए तो उन्होंने देखा कि कमलेश इधर-उधर से घूमता-घामता आकर बाउंड्री या झूले पर बैठा रहता और मध्याह्न भोजन के समय खाना खाकर चला जाता था। शिक्षक ने कमलेश से बातचीत की और बच्चों के खेलकूद में उसे भी शामिल करना शुरू किया। इस तरह कमलेश बच्चों के बीच एक नई पहचान बना सका तथा विद्यालय के अन्य शिक्षकों के बीच भी यह भरोसा विकसित हुआ कि कमलेश के विद्यालय में बने रहने से कोई नुकसान नहीं है।

इस तरह धीरे-धीरे कमलेश खेल के मैदान से होता हुआ कक्षा के भीतर भी स्थान पा गया। उसे भी अन्य

बच्चों के जैसा ही दर्ज़ा मिला, कॉपी पेंसिल और पोशाक मिली, रोज़ विद्यालय आ सकने का अधिकार मिला। अब वह कुछ सरल वाक्य भी लिख सकता है।

***

एक अन्य स्कूल में भी मुझे एक बच्चा मिला। जब सभी बच्चे अपनी कक्षाओं में बैठकर अपने-अपने शिक्षकों से ज्ञान प्राप्त कर रहे होते थे, उस वक्त बाहर मैदान में लगे बड़े पेड़ के नीचे चबूतरे पर बैठा एक बच्चा दिनभर स्वयं ही अपनी किताब देख-देख कर कुछ-न-कुछ लिखता रहता था। उसके बारे में मालूमात करने पर पता चला कि

दो साल पहले तक वह अपनी कक्षा का सबसे होशियार बालक हुआ करता था। पिता दिहाड़ी मज़दूर थे और काम पाने के लिए शहर में ही रहते थे व हफ्ते-पन्द्रह दिन में घर आते-जाते रहते थे। घर पर माँ उसकी देख-रेख करती थीं लेकिन वह बीमार पड़ीं और गुज़र गईं। पिता ने दूसरी शादी कर ली और नई माँ उसे अपना प्यार न दे सकीं। पिता की गैरहाज़िरी में उससे बहुत-से काम करवाए जाने लगे तथा बात-बात पर मारा-पीटा जाने लगा। पिताजी के घर आने पर माँ उनसे भी शिकायत करती थीं। एक दिन इसी तरह की कलह में पिता ने उसके सर पर कोई भारी लकड़ी का टुकड़ा मार दिया। काफी दिन अस्पताल में रहने के बाद जब वह ठीक हुआ तो पहले जैसा नहीं रह गया। याद्दाश्त पर असर हुआ और मिर्गी के दौरे भी आने लगे। कई बार कक्षा में बैठे ही पाखाना-पेशाब हो जाया करती थी जिसे उसी से साफ भी कराया जाता था। इस सबके बावजूद उसका स्कूल आना बन्द नहीं हुआ। शिक्षकों का कहना है कि वह रोज़ सुबह स्कूल आता है और दोपहर को खाने के बाद पास के जंगल में बनी मज़ार पर चला जाता है।

***

इन दोनों ही उदाहरणों पर अगर गौर करें तो पाएँगे कि इन बच्चों का विद्यालय से नाता बनाए रखने के पीछे मध्याह्न भोजन भी एक महत्वपूर्ण कारण है। पहले उदाहरण में भोजन कमलेश को विद्यालय तक खींच लाने का कारण बना और बाद में शिक्षकों का स्नेह और बच्चों के साथ पनपी मित्रता उसे कक्षा तक खींच लाई और वह लिखना-पढ़ना सीख रहा है। दूसरे उदाहरण में तो एक अच्छा खासा बच्चा घर, परिवार, समुदाय और शिक्षकों से तिरस्कृत होता हुआ कक्षा के भीतर से बाहर पहुँचा दिया गया है, लेकिन शायद भोजन एक बड़ा कारण रहा है जिस वजह से उसका नाता अभी भी अपने स्कूल से बना हुआ है।

अब ऐसे में अगर कोई यह कहता है कि मध्याह्न भोजन की वजह से शिक्षा व्यवस्था गर्त में जा रही है तो उसे इन पहुलओं पर भी गौर कर लेना चाहिए। ऐसे समय में, जब हमारी सरकारें शिक्षा अधिकार अधिनियम तथा खाद्यान्न अधिकार अधिनियम जैसे बिल पेश कर रही है तो हमें भी विद्यालयों में आ रहे बच्चों के प्रति संवेदनशील होने की ज़रूरत है। यह बात सही है कि अगर विद्यालय में ढेर सारे बच्चों के लिए रोज़ खाना बन रहा है तो शायद शिक्षकों की एक ज़िम्मेदारी और बढ़ी है। जहाँ महिला समूह या दूसरी संस्थाएँ पका हुआ भोजन उपलब्ध करा रही हैं वहाँ भी भोजन की गुणवत्ता तथा मात्रा सम्बन्धी निगरानी का भार इनके ही कन्धों पर आएगा लेकिन इसको सकारात्मक रूप में देखने की ज़रूरत है। एक शिक्षक होने के नाते हम बच्चों को ज्ञान देने के अलावा उनकी पोषण सम्बन्धी ज़रूरतों पर ध्यान देकर भारत की नई पीढ़ी को और भी स्वस्थ तथा मज़बूत बना सकेंगे।

मोहम्मद उमरः आई.सी.आई.सी.आई. बैंक के फाउंडेशन में कार्यरत हैं। वे फिलहाल स्कूल एंड टीचर्स एज्यूकेशन रिफॉर्म प्रोग्राम, राजस्थान से जुड़े हैं। उदयपुर में निवास।

सभी चित्रः बोस्की जैनः सिम्बायोसिस ग्राफिक्स एंड डिज़ाइन कॉलेज, पुणे से ग्राफिक्स डिज़ाइन में स्नातक। भोपाल में निवास।